International Journal of Sociology and Humanities
www.sociologyjournal.net
Online ISSN: 2664-8687, Print ISSN: 2664-8679
Received: 01-11-2021, Accepted: 05-12-2021, Published: 10-01-2022
Volume 4, Issue 1, 2022, Page No. 37-39

ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन का स्वरूप

रिंकी कुमारी

गवेषिका, समाजशास्त्र विभाग, ल०ना०मि० विश्वविद्यालय, कामेष्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

प्रस्तावना

संरचना शब्द का प्रयोग विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से किया है। संरचना शब्द का प्रयोग विभिन्न भवन निर्माण जैसे विषय से लिया गया है। आरंभिक मार्क्सवादी साहित्य में भी संरचना की अवधारणा का प्रयोग इमारत जैसी चीज बनाने के अर्थ में किया गया था। समाजशास्त्र में संरचना एवं प्रकार्य जैसे शब्दों के प्रयोग का प्रथम श्रेय हर्बर्ट स्पेंसर को जाता है। स्पेंसर का कहना था कि समाज की तुलना शरीर से करके हम आसानी से उसे समझ सकते हैं। एमिल डर्कहाइम ने भी इस उपमा का प्रयोग जगह–जगह पर किया है। रैडक्लिफ–ब्राउन ने संरचना सम्बन्धी विचार को डर्कहाइग से ग्रहण किया। इवांज– पिवर्ड, फोटीस एवं फोर्ड ने रैडक्लिफ – ब्राउन का अनुसरण करते हुए समाज के अन्य पक्षों, यथा – राजनीतिक संरचना, नातेदारी की संरचना आदि पर अपना अध्ययन केन्द्रित किया। दूसरी ओर, फ्रांसीसी संरचनावादी क्लॉड लिवी– स्ट्रॉस ने संरचना की अवधारणा को एक नया आयाम देने का प्रयास किया। लिवी – स्ट्रॉस के लिए संरचना का स्वरूप अगूर्त एवं विश्लेषणात्मक होता है। रैडक्लिफ–ब्राउन की नजरों में संरचना एक अमूर्त कल्पना न होकर एक अनुभवाश्रित तथ्य है।

सामाजिक संरचना का आधार व्यक्तियों का आपसी संबंध है। सामाजिक संबंध मुख्य रूप से इस अपेक्षा से जुड़ा है कि समाज के तमाम सदस्य नियमों का पालन करेंगे। समाज द्वारा मान्य नियमों एवं तरीकों की प्रणाली को ही हम संस्था कहते हैं। संस्थाएँ सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित होती हैं एवं उनके अनुसार संस्थाएँ व्यक्तियों के अपेक्षित वर्ताव को परिभाषित करती हैं। रैडक्लिफ – ब्राउन का विचार है कि सामाजिक संरचना का वर्णन उन संस्थाओं के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए, जो एक से अधिक व्यक्ति एवं समूह के संबंधों को नियमित करती हैं।[1]

जॉनसन ने बताया है कि जब कभी भी हम संरचना की बाते करते हैं, तो इससे यही बोध होता है कि संरचना के अन्तर्गत विभिन्न तत्त्व होते हैं और उन तत्त्वों के बीच एक स्थायी संबंध होता है, क्योंकि स्थायित्व के अभाव में सामाजिक व्यवस्था की संरचना और उसके प्रकार्यों को खतरा है। समाज जिन तत्वों के मिलने से बना है, उन तत्त्वों के बीच संबंध स्थायी होते हैं। उन तत्त्वों का स्वरूप भी सापेक्षिक रूप से काफी स्थायी होता है, जैसे समाज के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के छोटे–मोटे समूह होते हैं, जो काफी स्थायी होते हैं। जिस प्रकार भीड़ हर रोज बनती और बिगड़ती है, उस प्रकार से सामाजिक समूह हर क्षण नहीं बनते और बिगड़ते हैं। जैसे परिवार एक सामाजिक समूह का उदाहरण है, जिसमें परिवर्तन बहुत ही धीमी गति से आता है और परिवर्तन आने के बावजूद परिवार का एक निश्चित स्वरूप बना हुआ रहता है। प्रत्येक समाज के अन्तर्गत रामूह और समूह के बाहर व्यक्ति विभिन्न सामाजिक नियम–कानूनों को ध्यान में रखकर आचरण करता है, वे नियम–कानून आसानी से नहीं बदलते हैं। नियम–कानूनों में एक प्रकार का स्थायित्व होता हैं। नियम–कानूनों में स्थायित्व का एक सबसे प्रमुख कारण यह है कि सामाजिक मानदण्डों एवं मूल्यों में एक स्थिरता पायी जाती है। समाज के आदर्श और मूल्य बहुत ही धीरे–धीरे बदलते हैं। प्रत्येक व्यक्ति से यह उम्मीद की जाती है कि वह समाज के आदर्श, मूल्य एवं मानदण्ड को ध्यान में रखकर ही आचरण करें।[2]

सामाजिक परिर्वतन

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और चूँकि समाज भी उसी प्रकृति का एक अंग है, इस कारण सामाजिक परिवर्तन भी प्राकृतिक या स्वाभाविक। समाज मानव जीवन के प्रारम्भ से ही मनुष्य के साथ है और तब से अब तक की अवधि में समाज या सामाजिक जीवन में उसके स्वरूप, संरचना, व्यवस्था, संगठन, मूल्य, संस्था, आदर्श सब कुछ में परिवर्तन की निरन्तर और अवश्यम्भावी प्रक्रिया में कभी भी कमी नहीं हुई है। किसी भी ऐसे समाज की कल्पना नहीं की जा सकती जो पूर्णतया स्थिर हो। परिवर्तन तो प्रत्येक समाज में होगा ही, अपरिवर्तनशील समाज का वास्तविक अस्तित्व तो हो ही नहीं सकता। समाज व उसके विभिन्न पक्षों में परिवर्तन स्वाभाविक है परन्तु इस स्वाभाविक विलक्षणता की एक विशेषता यह है कि प्रत्येक समाज में परिवर्तन की प्रकृति अलग–अलग होती है।

प्रकृति का तात्पर्य गति तथा स्वरूप से है। प्रत्येक समाज में सामाजिक परिवर्तन की गति एक समान नहीं होती है। किन्हीं समाजों में यह परिवर्तन द्रुत गति से होता है तो किन्हीं में गन्द गति से होता है।

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा

फिचर ने 'परिवर्तन' शब्द को समझाते हुए कहा है कि परिवर्तन को संक्षिप्त रूप में पहले की अवस्था या अस्तित्व की विधि में रूपान्तरण को कहते हैं। इसी अर्थ के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि समाज में पहले जो अवस्था थी, यदि उस अवस्था में कोई हेर फेर या बदलाव दृष्टिगोचर होता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जायगा, परन्तु यह अर्थ अत्यन्त अस्पष्ट है साथ ही संकुचित भी। वास्तव में सामाजिक परिवर्तन के अर्थ मे विद्वानों के अलग–अलग विचार हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि जब सामाजिक ढाँचे में कोई परिवर्तन हो जाता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

दूसरे कुछ विद्वानों का मत है सामाजिक संबंधों में परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहना चाहिए। विशिष्ट अर्थ में सामाजिक जीवन के किसी भी पक्ष में कोई भी परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है। वास्तव में समाज का विश्लेषण अनेक विद्वानों ने अपने अलग–अलग रूप में किया है उसी रूप में सामाजिक परिवर्तन का भी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन मोटे तौर पर समाज में या समाज के सदस्यों के जीवन में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं। ठोस अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ यह है कि समाज के अधिकतर व्यक्ति इस प्रकार के कार्यों को करने में लगे हैं जो उनके पहले के लोगों के कार्यों से भिन्न हैं। समाज प्रतिमानित मानवीय संबंधों का एक विशाल तथा जटिल जाल – सा है जिसमें समस्त मनुष्य अंश ग्रहण करते हैं। जब मानव व्यवहार के रूपान्तर की प्रक्रिया क्रियाशील होती है, तब हम उसी को दूसरे रूप में इस प्रकार कहते हैं कि सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।[3]

किंग्सले डेविस के अनुसार सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज के ढाँचे और प्रकार्यो में घटित होते हैं।[4] मैकाइबर तथा पेज के अनुसार सामाजिक संबंधों में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

जौन्सन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन को लोगों के कार्य करने तथा विचार करने की पद्धतियों में रूपान्तरण कहकर परिभाषित किया जा सकता है। स्पष्ट तौर पर सामाजिक परिवर्तन उस व्यवस्था में परिवर्तन को कहते हैं जिसके अन्तर्गत मानवीय सामाजिक अन्तः क्रियाएँ व अन्तःसम्बन्ध संगठित, नियंत्रित और स्थिर रहते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति की विशेषताएँ

सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है :

1. **सामाजिक परिवर्तन एक सामुदायिक परिवर्तन है :** इस विशेषता का तात्पर्य यही है कि सामाजिक परिवर्तन का संबंध किसी व्यक्ति विशेष या समूह – विशेष के जीवन में होने वाले परिवर्तनों से नहीं होता है। सामाजिक परिवर्तन तो वास्तव में वह परिवर्तन है जो पूरे समुदाय के जीवन से संबंधित हो अर्थात् उस परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। जिसके प्रभाव को सामुदायिक रूप से अनुभव किया जाता है। वास्तव में सामाजिक परिवर्तन इसी अर्थ में सामाजिक है कि इसमें अन्तर्निहित परिवर्तन की धारणा वैयक्तिक नहीं है।
2. **सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौतिक घटना है :** इस विशेषता का सीधा–सादा अर्थ यही कि सामाजिक परिवर्तन सर्वव्यापी है और इसलिए परिवर्तन की यह घटना बिना किसी अपवाद के संसार के सभी समाजों में सामान्य है। ऐसा कोई समाज विश्व के किसी भी कोने में नहीं है जिसमें परिवर्तन न होता हो एवं जो पूर्णतया स्थिर हो। आदिम से आदिम समाज से लेकर आधुनिकतम सभी समाजों को सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार करना ही पड़ता है। हाँ, इतना अवश्य है कि इस परिवर्तन की प्रकृति व स्वरूप अलग–अलग समाज में अलग–अलग तरह का होता है। इसलिए बीरस्टीड ने कहा है कि किन्हीं भी दो समाजों का इतिहास एक समान नहीं होता, किन्हीं भी दो समाजों की संस्कृति एक जैसी नहीं होती, कोई भी एक–दूसरे का प्रतिरूप नहीं है।[5]
3. **सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा तुलनात्मक है :** इस विशेषता का अर्थ यह है कि सामाजिक परिवर्तन होता तो सभी समाजों में हैं, पर इस परिवर्तन की गति प्रत्येक समाज में या एक ही समाज के विभिन्न पक्षों में रामान नहीं होती। इसका प्रमुख कारण यह है कि सामाजिक परिवर्तन को लाने वाले कारक प्रत्येक समाज में समान रूप से क्रियाशीज नहीं होते। साथ ही, सामाजिक परिवर्तन की गति के बारे में अनुमान तभी लगाया जा सकता है जबकि हम एक समाज की दूसरे समाज से अथवा एक ही समाज के एक पक्ष की दूसरे पक्ष से तुलना करें। इसी तुलनात्मक आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय गाँवों की अपेक्षा शहरों में परिवर्तन की गति तेज है।
4. **सामाजिक परिवर्तन की गति व प्रकृति समय–कारक से प्रभावित व संबंधित होती है :** इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी समाज में प्रत्येक समय, काल या युग में परिवर्तन की गति एक समान नहीं होती। मध्य युग की तुलना में आधुनिक युग में परिवर्तन की गति तेज है। उसी प्रकार आजादी के पूर्व की अपेक्षा आज परिवर्तन की गति अवश्य ही तेज हैं। प्रत्येक समय, काल या युग में परिवर्तन की गति इस कारण अलग–अलग होती है क्योंकि समय के बदलने के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन लाने वाले कारक स्वयं भी एक से नहीं रहते। उन कारकों के प्रभावों में भी परिवर्तन हो सकता है और होता भी है।
5. **सामाजिक परिवर्तन एक अनिवार्य नियम के रूप में होता है :** परिवर्तन प्रकृति का नियम है और सामाजिक परिवर्तन भी उसी अनिवार्य नियम द्वारा नियमित व निर्देशित होता है। यही कारण है कि सामाजिक परिवर्तन होकर ही रहता है, चाहे वह परिवर्तन प्राकृतिक कारकों द्वारा अनिवार्य रूप से हो अथवा नियोजित रूप में समाज द्वारा ऐच्छिक आधार पर जान–बूझकर किया जाता हो। स्वभावतः ही हम परिवर्तन की इच्छा रखते हैं, साथ ही हमारी आवश्यकताएँ भी बदलती रहती हैं। इन इच्छाओं और इन्तार में उसकी राह ताकते हैं। वर्तमान समय में परिवर्तन का उत्साहपूर्ण स्वागत जीवन का प्रायः एक ढंग सा बन चुका है।
6. **सामाजिक परिवर्तन की निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती :** कोई भी व्यक्ति सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति के संबंध में कोई निश्चित पूर्व अनुमान नहीं लगा सकता। इस अर्थ में सामाजिक परिवर्तन बहुत कुछ अनिश्चित होता है पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सामाजिक परितर्वन का कोई अन्तर्निहित नियम होता ही नहीं है। इसका तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि अनेक आकस्मिक कारक भी परिवर्तन ला सकते हैं और लाते भी हैं। इसलिए भविष्य के परिवर्तन के संबंध में निश्चित भविष्यवाणी करना कठिन है। उदाहरणार्थ यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अस्पृश्यता के विरुद्ध सामाजिक–राजनीतिक आन्दोलन के फलस्वरूप भविष्य में भारतीय समाज में छुआछूत की भावना कम हुई है, आधुनिक कानूनों के पास हो जाने से विवाह के आधार पर आदर्श में परिवर्तना हुआ है, औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरीकरण की प्रक्रिया में तेजी आयी है पर किसी भी स्थिति में इनके निश्चित स्वरूपों के संबंध में भविष्यवाणी नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार सामाजिक विचार, मनोवृत्ति, आदर्श या मूल्यों में भविष्य में क्या परिवर्तन होगा, यह बताना निश्चित तौर पर कठिन है।[6]

सामाजिक परिवर्तन के प्रकार

सामाजिक परिवर्तन के प्रकृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न समाजों में सामाजिक परिवर्तन का कोई निश्चित रूप नहीं होता है। इस क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान प्राप्त तथ्यों के अवलोकन से स्पष्ट होता अध्ययन में शामिल 20 से 30 वर्ष के 42 (21:), 31 से 40 वर्ष के 56 (28:), 41 से 50 वर्ष के 50 (25:), 51 से 60 वर्ष के 32 (16:) तथा 61 वर्ष से ऊपर के 20 (10:) अर्थात् सभी उत्तरदाताओं के अनुसार वर्तमान समय में मुद्रा का महत्त्व अनाज से कही अधिक बढ़ गया है परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज में भी अब अनाज की लेन–देन की जगह मुद्रा का प्रचलन बढ़ा है। लोग अब किसी भी कार्य के बदले अनाज की अपेक्षा पैसा ही लेना चाहते हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में ग्रामीण समाज के परिवार के स्वरूप में परिवर्तन दिखलाई पड़ रहा है, जाति व्यवस्था की अहमियत कम होने लगी है। लोग अब जाति आधारित कामों को छोड़कर रोजगार हेतु अन्य कार्य करने लगे हैं, लोगों के खान–पान में बदलाव आया है। ऊँच–नीच की जो रेखा पूर्व में समाज के अन्दर खींच दी गई थी उसमें भी बदलाव आया है लोग अब लोग इन बातों पर ध्यान नहीं देते हैं।

संदर्भ

1. फिचर, जोसेफ एच. (1971) : सोशियोलोजी, यूनिवसिर्टी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, पृ० 30
2. डेविस, किंग्सले (1959) : ह्यूमन सोसायटी, मैकमिलन प्रेस, न्यूयार्क, पृ० 622
3. मैकाइबर, आर. एम. एवं पेज (1953) : सोसाइटी, मैकमिलन प्रेस, लंदन, पृ० 511
4. जैन्सन, एम.डी. (1943) : इन्ट्रोडक्शन टू सोसियोलाजी एण्ड सोशल प्रोब्लेम्स, सी.बी. मौसबी कम्पनी, एसटी ल्यूइस, पृ० 199
5. बीरस्टीड, रोबर्ट (1957) : द सोशल आर्डर, मैकग्राहिल, न्यूयार्क, पृ० 522
6. मैकाइबर, आर. एम. एवं पेज (1953) : उपरोक्त, पृ० 519–521